

षष्ठ दीक्षान्त समारोह

माननीय मानव संसाधन विकास मंत्री डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक'

माननीय मानव संसाधन विकास राज्यमंत्री श्री धोत्रे संजय शाम राव,

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान के कुलपति आचार्य परमेश्वर नारायण शास्त्री,

विद्वज्जन, अतिथिगण तथा प्रिय विद्यार्थियों

आज दीक्षान्त समारोह के पावन अवसर पर मैं आप सब का विशेष कर उन विद्यार्थियों का अभिनन्दन करता हूँ जिन्हें आज उपाधियां प्रदान की जा रही हैं— स्नातक , आचार्य, शिक्षा शास्त्री, शिक्षा आचार्य, एवं विद्या वारिधि। आज आप उस सस्थानों से उपाधियां प्राप्त कर रहे हैं जिसने संस्कृत अध्ययन तथा अध्यापन के क्षेत्र में गौरव का स्थान अर्जित किया है। शिक्षा और दीक्षा मनुष्य को सभ्रान्त, सुसंस्कृत और सक्षम बनाते हैं। दीक्षान्त समारोह का महत्त्व यह है कि आज आपकी दीक्षा हुई किन्तु शिक्षा चलती रहेगी। शिक्षा और दीक्षा में अंतर है। शिक्षा का उद्देश्य है - ज्ञान की प्राप्ति, विद्या का अर्जन। शिक्षा सीखने की प्रक्रिया है। विद्या का अर्थ है—अध्ययन और शिक्षा से प्राप्त होने वाला ज्ञान। इसीलिए जहाँ विद्यार्थी विद्या का अर्जन करता है उसे विद्यालय कहते हैं। दीक्षा गुरु द्वारा दिया गया वह मंत्र है जो यह उद्घोष करता है कि एक स्थान पर बैठ कर, एक प्रक्रिया के द्वारा, शिक्षित होने का समय समाप्त हुआ। अब आप जीवन सागर में स्वयं विचरण करने के लिए, जीवन संग्राम में स्वयं सघर्ष करने के लिए सक्षम हो गए।

शिक्षा बोध करा देती है कि क्या करणीय है, क्या अकरणीय है। शिक्षा विवेक को जागृत कर देती है। दीक्षांत गुरु की अंतिम शिक्षा है, विद्यालय के निकास द्वार पर खड़े शिष्य को - अपना जीवन लक्ष्य निर्धारित करो और लक्ष्य की प्राप्ति के लिए स्वयं को समर्पित कर दो। दीक्षा के द्वारा गुरु एक द्वार बंद करता है और दूसरा द्वार अपनी आशीष के साथ खोल देता है। किन्तु आपकी शिक्षा चलती रहेगी। अब आप स्वयं को शिक्षित करेंगे; अनुभवों से शिक्षा लेंगे।

जिज्ञासु और ज्ञान का पिपासु आजीवन सीखता रहता है। विद्यालय में उसे शिक्षक शिक्षित करते हैं। दीक्षा के उपरान्त विद्यार्थी स्वयं ही अपना शिक्षक हो जाता है। अनुभव और अनवरत अध्ययन से वह ज्ञान का अर्जन करता है और अपने जीवनोद्देश्य की पूर्ति में जुट जाता है। अब तक की शिक्षा ने आपको इस योग्य बना दिया है कि आप अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित कर लें। प्रत्येक युवा, विशेषकर संस्कृत के ज्ञान से संपुष्ट युवाओं को यह स्मरण रखना है कि भारत को पुनः विश्वगुरु के स्थान पर प्रतिष्ठापित करने में उन्हें अपना योगदान देना है। इस में भारत का ही नहीं, विश्व का—मानवता मात्र का—हित निहित है। भारत की मनीषा उद्घोष करती है—

“सहनाववतु, सहनौभुनक्तु, सह वीर्यं करवा वहै।

तेजस्विनावधीतमस्तु, मा विद्विशावहै।।

हम सब आनन्दपूर्वक मिलकर रहें, श्रम के फल का आनन्द मिलजुल कर उठाएं, सद्भावना के साथ कार्य करें, हम सब अपनी बुद्धि से प्रकाशमय और तेजस्वी बनें, किसी से ईर्ष्या—द्वेष न करें। सर्वत्र शान्ति विद्यमान हो।

मानव इस सृष्टि की सर्वोत्तम एवं सुन्दर रचना है— **‘दुर्लभ मनुष्यत्वम्’**। जो शक्तियाँ मनुष्य को प्राप्त हैं, वे अन्यजीवों को नहीं। समस्त जीवों में केवल मनुष्य ही चिन्तनशील, मननशील और विवेकशील है। भौतिक और आत्मिक उन्नति की पराकाष्ठा को प्राप्त करना केवल मानव के लिए ही संभव है। मनुष्य का चोला पहन कर जन्म लेने मात्र से मनुष्य, मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं हो जाता। वास्तविक मनुष्य वह है जिसके जीवन का कोई उद्देश्य हो, उस उद्देश्य को वह पूरा करे और जब इस चोले का विसर्जन करे तो इतिहास के पृष्ठों में लिखने लायक कुछ चिन्ह छोड़ कर जाये। मनुष्य समाज की वह इकाई है जिसकी उन्नति—अवनति, उत्कर्ष—अपकर्ष से समाज की प्रगति निर्धारित होती है। कारण व्यष्टि का समन्वित रूप ही समष्टि है।

किसी भी समाज या राष्ट्र का प्राणतत्त्व वहाँ की संस्कृति होती है। भारतीय संस्कृति में न केवल मानव, बल्कि सम्पूर्ण चराचर जगत के लिए सत्य, शिव, तथा सुन्दर का पावन सन्निवेश है। हजारों वर्षों से विभिन्न सांस्कृतिक आक्रमणों को झेल कर भी यह अपने स्थान पर अक्षुण्ण अविच्छिन्न बनी हुई है। भारत यथार्थतः ‘भा—रत’ (आभा से देदीप्यमान) रहे तथा हममें भारतीय होने का सहज स्वाभिमान जागे, इसके लिए हमें गम्भीरता से भारतवर्ष के वास्तविक गौरव और उसकी अन्तरात्मा में रची—बसी भारतीय संस्कृति से भली—भाँति परिचित हो जाना अनिवार्य है।

भारतीय संस्कृति की अन्तरात्मा संस्कृत में निहित है। संसार की समस्त परिष्कृत भाषाओं में संस्कृत ही प्रचीनतम है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से संसार में दो ही भाषाएँ ऐसी हैं जिनके बोलने वालों ने संस्कृति तथा सभ्यता का निर्माण किया है। एक है ‘आर्यभाषा’ और दूसरी है ‘सेमैटिक भाषा’। आर्यभाषा के अन्तर्गत दो विशिष्ट शाखाएँ हैं— पश्चिमी और पूर्वी। पश्चिमी शाखा के अन्तर्गत यूरोप की सभी प्राचीन तथा आधुनिक भाषाएँ सम्मिलित हैं— ग्रीक, लैटिन, द्यूटानिक, फेंच, जर्मन, इंग्लिश आदि। ये सब भाषाएँ मूल आर्यभाषा से ही उत्पन्न हुई हैं। पूर्वी शाखा में दो प्रधान विभाग हैं— ईरानी और भारतीय। ईरानी भाषा का नाम ‘जेन्द अवेस्ता’ है तथा भारतीय शाखा में संस्कृत ही सर्वस्व है। यही सबसे प्राचीनतम है। भारत की प्रायः समस्त प्रान्तीय भाषाओं का उद्भव संस्कृत ही है।

अन्य भाषाओं की तरह संस्कृत केवल एक भाषा मात्र ही नहीं है। संस्कृत अपनी समग्रता के लिए जानी जाती है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी संस्कृत की अपनी विशिष्टता है। यही कारण है कि जहाँ विश्व की कई भाषाएँ अस्तित्व विहीन हो गईं, कई भाषाओं का रूप लगभग पूरा ही बदल गया है किन्तु संस्कृत आज भी अपने मूल रूप में स्थित है। संस्कृत की प्रासंगिकता सनातन है और रहेगी। संस्कृत भाषा में कम से कम शब्दों के द्वारा अधिक से अधिक गम्भीर भावों को प्रकट करने का अद्भुत सामर्थ्य है।

मानव विकास के बल पर अन्तरिक्ष तक में अपना शौर्य स्थापित कर चुका है। पिछली सदी और इस सदी के जोड़ के इर्द—गिर्द विज्ञान ने अद्भुत अपूर्व उपबद्धियाँ की हैं। विकास की ओर द्रुत गति से गतिमान मानवता की प्रगति में आज विश्व ऐसे मोड़ पर खड़ा है जहाँ नैतिकता के परम्परागत मूल्यों और विज्ञान की उपलब्धियों के बीच विवेकशील सन्तुलन बनाने की महती आवश्यकता अनुभव हो रही है। अन्यथा, दिशाहीन नैतिकताविहीन विकास हमारे ही

विनाश का कारण बन सकता है। विकास एवं आधुनिकता के नाम पर हम बिना सोचे समझे अपने पूर्वजों, विशेषकर हमारी ऋषि-प्रज्ञा द्वारा स्थापित उपकारक मानदण्डों का परित्याग करते जा रहे हैं। नवीनता के नाम पर अनजाने ही अन्धानुकरण की प्रवृत्ति हमारी जीवनशैली में व्याप्त होती जा रही है। कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य, ग्राह्य और त्याज्य, आवश्यक और अनावश्यक तथा उचित और अनुचित की कसौटियों पर अपना चिन्तन, वचन और कर्म कसकर परखते रहने की आन्तरिक प्रक्रिया जो भारतीय संस्कृति की सीख है वह क्षीण हो रही है। यही प्रक्रिया हमें हमारी अपनी भाषाओं से दूर करती जा रही है। प्रत्यक्षतः इसका कारण है कि पाश्चात्य संस्कृति और आधुनिकता की चकाचौंध और आकर्षण है।

संस्कृत हमें दो प्रकार से सशक्त और समृद्ध करती है। संस्कृत संस्कृति का अगाध श्रोत है। इस भाषा के ज्ञान मात्र से इसके कोष में संचित असीम संपदा से साक्षात्कार होने लगता है। दूसरे, हमारा देश भारत एक बहुआयामी राष्ट्र है। अनेकता में एकता हमारी पहचान है। और इस एकता को एक सूत्र में पिरोने का काम संस्कृत भाषा करती है। इस प्रकार व्यक्ति और राष्ट्र—दोनों ही धरातल पर, हमारी सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्ण रखने का काम संस्कृत भाषा करती है। विद्या और शिक्षा के दृष्टिकोण से देखें तो संस्कृत भारतीय ज्ञान और विज्ञान का भंडार है। इसमें गणितशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, खगोलशास्त्र, वास्तुशास्त्र, दर्शनशास्त्र, आयुर्वेदशास्त्र, अर्थशास्त्र, शिल्पशास्त्र, तथा सम्पूर्ण विश्व को एक सूत्र में बांधने वाला योगशास्त्र इत्यादि भी हैं।

समाज में जैसे-जैसे विज्ञान और तकनीक का प्रभुत्व बढ़ रहा है, वैसे-वैसे व्यक्ति के चारित्रिक एवं नैतिक मूल्यों का संरक्षण एक चुनौती बनती जा रही है। भारतीय महर्षियों ने धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष—इन चार पुरुषार्थों की अवधारणा के आधार पर जीवन जीने की अति विवेक युक्त व्यवस्था दी है। जिनमें प्रथम और अन्तिम (धर्म और मोक्ष के पुरुषार्थ) लगभग विस्मृत हो गए हैं। अब जीवन में केवल अर्थ और काम ही लक्ष्य रह गये हैं। परिणामतः हमारे दैनन्दिन जीवन में भ्रष्टाचारों एवं अनाचारों में वृद्धि होती जा रही है। न्यायालयों में वर्षों से लम्बित वाद, पुलिस थानों (Police Station) की संख्या बढ़ाने के लिए दबाव—इनके सहित देश और विश्व की अनेक समस्याओं का कारण शिष्टाचार और स्वानुशासन का अभाव है। विश्वविद्यालयों के दीक्षान्त समारोहों में 'सत्यं वद, धर्मं चर, मातृ देवो भव, पितृ देवो भव', का संकल्प लेने वाले देश में आज वृद्धाश्रमों (Old Age Home) की तीव्र आवश्यकता अनुभव हो रही है। विधि के क्षेत्र से जुड़े होने के नाते मैं स्मरण करता हूँ कि सार्थक निर्णय, जटिल विधिक विवादों के समाधान हेतु, विशेषकर हिन्दू विधि के मिताक्षरा या दायभाग विधान से सम्बन्धित निर्णयों के लिए संस्कृत विद्वानों के और संस्कृत के ग्रन्थों से बहुतायत रूप से लिए गये उद्धरणों से संपुष्टि प्राप्त करते थे।

श्रीमद् भगवद् गीता पर बोलते हुए एक संत ने कहा कि अर्थ, धर्म, काम, और मोक्ष—यह चार सूत्र वस्तुतः एक जंजीर की चार कड़ियां हैं जो उसी क्रम में एक दूसरे से जुड़ी हैं और परस्पर पूरक हैं, एक दूसरे पर आश्रित हैं। मनुष्य धर्म से अर्थ का अर्जन करे और अर्थ का प्रयोग धर्म का आचरण करने में करे। काम अर्थात् गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर गृहस्थ आश्रम

के सुख का उपभोग तो करे किन्तु एक सदगृहस्थ के उतरदायित्व, स्वयं के प्रति, परिवार के प्रति, समाज के प्रति, राष्ट्र के प्रति, और मानव मात्र के प्रति इस सब का समग्र निर्वहन धर्माचरण से करे। ऐसा गृहस्थ जीवन जीने के सूत्र धर्म से मिलेंगे और गृहस्थ जीवन की आचार संहिता का पालन करता हुआ व्यक्ति धर्म का अर्जन भी करेगा जो उसके लिए मोक्ष प्राप्ति का मार्ग बनेगा। साधु और सन्यासी होने की तुलना में धर्मानुकूल गृहस्थ का जीवन व्यतीत करना अधिक कठिन है। किन्तु मोक्ष प्राप्ति का भी सुनिश्चित साधन गृहस्थ होना है। इस प्रकार अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष परस्पर जुड़ी हुई कड़ियों की ऐसी श्रृंखला है जो एक आदर्श जीवन की परिचायक है।

भाषा एवं साहित्य का प्रभाव व्यक्ति के अवचेतन पर होता है जो कालान्तर में उस का स्वभाव, तदनन्तर चरित्र बन जाते हैं। संस्कृत के अध्येताओं के मन, कर्म तथा वाणी में स्वाभाविक एकरूपता होती है। संस्कृतज्ञों के चिन्तन की व्यापकता तथा सार्वभौमिकता का साक्षी विश्व का इतिहास है।

यह चिन्ता का विषय है कि आज हमारे देश में भी विद्यालय से विश्वविद्यालय तक के पाठ्यक्रमों में इस सहज मानवीय धर्म की शिक्षा की उपेक्षा हो रही है। इस विषय पर बिना किसी पूर्वाग्रह के समग्रता के साथ चिन्तन करने की आवश्यकता है, अन्यथा मानवता को बर्बरता की ओर अग्रसर होने से रोक पाना कठिन होगा। आपने संस्कृत का अध्ययन किया है। आप इस तथ्य से सहज ही सहमत हो सकेंगे कि हमारे वैयक्तिक पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा वैश्विक जीवन को प्रभावित करने वाले इन तत्त्वों पर सूक्ष्मता से विचार कोई संस्कृत का अध्येता ही कर सकता है। मेरे विनम्र मत में आप निश्चित रूप से औरों से अलग एवं विशिष्ट हैं। आपके कंधों पर बड़ा दायित्व है। संस्कृत का अध्ययन कर लेने से ज्ञान के अगाध सागर में आप विचरण कर रहे हैं। आप सद्चिन्तन कर सकते हैं और स्वस्थ समाज, सशक्त राष्ट्र और उत्कृष्ट विश्व की रचना में अपना योगदान दे सकते हैं।

हमारी संस्कृति में माता, मातृभूमि और मातृभाषा का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। रामायण का प्रसंग है। लंका विजय के पश्चात् वहां की सुन्दरता से आकृष्ट लक्ष्मण जी ने वहां निवास हेतु रामचन्द्र जी के समक्ष प्रस्ताव किया। परन्तु रामचन्द्र जी ने मां और मातृभूमि के प्रति स्नेह और समर्पण के कारण लंका का परित्याग कर दिया। कहा—

**यद्यपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते ।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ॥ (वा. रा.)**

वैदिक ऋषि कहते हैं— “माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ।” यह धरती एक भूखण्ड या भोगभूमि मात्र नहीं है। यह हमारी जन्मभूमि, कर्मभूमि, पुण्यभूमि, है। इसके लिए सदैव हमें अपना सर्वस्व न्योछावर करने को उद्यत रहना होगा। मातृभूमि और मातृभाषा की सेवा करनी है तो संस्कृत को भी सशक्त करना होगा। संस्कृत साहित्य ने उदात्त विचारों और आध्यात्मिक मूल्यों को संवर्धित किया है। वैदिक ऋषियों ने सदैव चेतना को समुन्नत करने के लिए आकांक्षा की

है। यह भावना इस मंत्र में द्योतित होती है— आ नो भद्राः कृतवो यन्तु विश्वतः । सद्विचार हमें (सारी दिशाओं से) सब तरफ से आएँ।

सफल एवं सुखद जीवन की असंख्य युक्तियाँ संस्कृत शास्त्रों में निबद्ध हैं। अनेक ऐसी सूक्तियाँ हैं कि उनमें से एक का भी अवतरण हमारे स्वभाव में हो जाए तो उसी से हमारे आचरण में कल्याणकारी रूपान्तरण हो सकता है। उदाहरणार्थ, वेदव्यास जी ने कहा— “आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्” अर्थात् जो अपने लिए अच्छा नहीं लगता दूसरों के लिए भी वैसा कर्म न करें। कैसा सरल किन्तु कैसा विश्व व्यापी सूत्र!

महात्मा गांधी ने कहा है कि मातृ-भाषा के ज्ञान के बिना कोई सच्चा देशभक्त नहीं बन सकता। मातृ-भाषा के ज्ञान के बिना हमारे विचार विकृत हो जाते हैं और हृदय से मातृ-भूमि का स्नेह जाता रहता है¹।

आज समस्त मानव जाति एक अप्रत्याशित भय, कुंठा एवं त्रास से ग्रसित है। व्यक्ति अपने पड़ोसी से डर रहा है, समाज का एक वर्ग दूसरे वर्ग से भयाक्रान्त है। एक देश दूसरे देश को शत्रु समझ रहा है। शान्ति, सुख-चैन का अभाव सर्वत्र है। व्यक्ति से लेकर राष्ट्र तक सब अपनी अस्मिता की सुरक्षा में लगे हुए हैं। लेकिन अस्त्र-शस्त्रों के विकास – विस्तार से, भय और आशंका की सृष्टि तो हो सकती है, अभय की स्थिति नहीं बन सकती। मानव का सोच “वसुधैव कुटुम्बकम्” की ओर उन्मुख होने की आवश्यकता है—

**“सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्मवेत्॥”**

इस भाव के जागरण और क्रियान्वन में संस्कृत की महती भूमिका है।

संस्कृत में निहित ज्ञान समसामयिक संसार के संकटों के समाधान के लिए उपयोगी है, जो भारत विश्व को दे सकता है। वस्तुतः हमें संस्कृत वह सब दे सकती है जिसकी आवश्यकता एक सभ्य सुशिक्षित व अनुशासित समाज को होती है। आज पूर्व और पश्चिम एक दूसरे के निकट लाने में भारत की महती भूमिका है। जैसा विल ड्यूरांत (Will Durant) ने कहा है कि भारत हम लोगों को सहनशीलता तथा परिपक्व मस्तिष्क की शालीनता, निःस्पृह चेतना के शांत परितोष, आत्मिक शांति, एकीकरण और समस्त प्राणियों के लिए प्रेम दे सकता है।

संस्कृत वाग्देवी की पवित्र काया है। यह वह वाग्देवी है जो मानव के लिए सत्य उन्मेषित करती है ‘ऐसा सत्य,’ जो दिशा और काल से परे है।

विज्ञान ने वैश्विक विविधता (Global Diversity) को एक नया आयाम दिया है। विज्ञान की नवीनतम खोज यह कहती है कि ब्रह्माण्ड में जीवन के 87 लाख प्रकार हैं जिन्हें सूचीबद्ध किया जाए तो 1000 वर्ष का समय लग जाएगा²। किन्तु भारत की ऋषि-प्रज्ञा ने हजारों वर्ष

¹ Indian Opinion, 07.12.1912.

² Vithal c. Nadkarni, *Global family” As Supreme Crado & Strategy*, Times of India/Speaking Tree/17-08-2019

पूर्व यह खोज कर ली थी कि जीवन 84 लाख योनियों में भ्रमण करता है। विज्ञान की खोज, ऋषि खोज का खंडन नहीं पुष्टि ही करती है। प्रकृति ने विकास की प्रक्रिया में तीन लाख नये प्रकार विकसित कर लिये हैं। 84 लाख के निकट स्थित 87 लाख का आंकड़ा यह प्रमाणित करता है कि भारत की ऋषि प्रज्ञा विज्ञान के क्षेत्र में भी उतना ही दखल रखती थी जितना आज का आधुनिकतम विज्ञान रखता है। भारत में वैज्ञानिक तथ्यों का उल्लेख वेद और पुराण की पुस्तकों में मिलता है। इसका अर्थ यह है कि संस्कृत साहित्य में धर्म और विज्ञान एकाकार रहे हैं। इसका नवीन प्रमाण है संसद भवन के प्रवेश द्वार पर लिखा यह श्लोकांश—“वसुधैव कुटुम्बकम्” जहां प्रथम बार प्रवेश लेते समय हमारे प्रधानमंत्री महोदय ने मस्तक भूमि पर टेक कर प्रणाम किया था।

संस्कृत साहित्य में अंकित विचार केवल दार्शनिक बुद्धि की कल्पना या चमकित करने वाली युक्तियाँ नहीं हैं बल्कि आध्यात्मिक अनुभव से अन्वेषित चिरस्थायी सत्य हैं। ये वे प्रामाणिक तथ्य हैं जो जगत और प्रकृति के रहस्यों की तह तक ले जाते हैं। हमारी ऋषि – प्रज्ञा की खोज और आधुनिक विज्ञान की खोज में एक मौलिक अंतर है। विज्ञान मनुष्य के जीवन में भौतिक सुख सम्पदा की उपलब्धि हेतु नित नए प्रयोगों द्वारा प्रकृति पर विजय करना चाहता है, प्रकृति को परास्त करना चाहता है। हमारी ऋषि प्रज्ञा ने मानसिक शक्तियों को अति विकसित कर अनुभूति और अनुभव के द्वारा प्रकृति के रहस्यों से साक्षात्कार कर उनसे संवाद और तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास किया है ताकि मनुष्य केवल आनंद ही नहीं आध्यात्म को भी उपलब्ध कर सके। विज्ञान में संघर्ष की सम्भावना है। ऋषि-प्रज्ञा सामन्जस्य पर रूक जाती है।

आज जो विद्यार्थी इस संस्थान से शिक्षित और दीक्षित हो रहे हैं उनमें और अन्य विद्यालयों से शिक्षित और दीक्षित होने वाले विद्यार्थियों में एक महती अंतर है। मेरे सन्मुख उपस्थित स्नातकों तथा उपाधि अर्जनकर्ताओं को सम्बोधित करते हुए उन्हें स्मरण कराना चाहता हूँ कि आप अन्यो से विशिष्ट हैं। आपने एक ऐसी भाषा में अध्ययन कर प्रवीणता प्राप्त की है जो विश्व की प्राचीनतम भाषा है। ये भाषा अधिक नहीं तो कम से कम ६००० वर्षों से प्रयोग में है। इसे देवभाषा भी कहा जाता है। इसकी रचना और व्याकरण पूर्णतः वैज्ञानिक है। मानव शरीर के अंगों और प्रकृति के गुणों से इस भाषा का सीधा सम्बन्ध है। यह भाषा भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार के संवाद का साधन है और कृत्रिम बुद्धि (artificial intelligence) के प्रयोग के लिए भी सर्वाधिक उपयुक्त भाषा है। यह भाषा मानव का उत्थान और ज्ञान का अवतरण करने वाली भाषा है। परम विद्वान् स्वामी परमार्थानंद ने संस्कृत के विषय में कहा है – ‘its richness, beauty, subtlety, clarity and rigour reveals a culture which is rich in its interest, beautiful in its variety, subtle in its depth, clear in its understanding and rigorous in its penetrating analysis’³

³ The Wonder That is Sanskrit, p.97

देवियों और सज्जन वृन्द! इस राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान से उपाधि प्राप्त कर रहे स्नातकों और अन्य उपाधि धारकों की उपलब्धि, उत्साह, उनके चेहरे पर झलक रहा आत्मविश्वास उन्हें कुछ संकल्पों की ओर आमंत्रित करने के लिए मुझे प्रेरित करता है । उन सभी से, इस दीक्षांत समारोह में मेरी अपेक्षा है –

- (1) वे हमारे प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में समाविष्ट उत्कृष्ट ज्ञान की प्रामाणिकता एवं उनमें सन्निहित वैज्ञानिक तत्व का अन्वेषण कर उसे आधुनिक परिवेश में विश्व के सम्मुख प्रस्तुत करने में अपना योगदान देंगे। संक्षेप में कहूं तो आपको संस्कृत का पुर्नजागरण पुर्नशोधन करना है (Reinventing the Sanskrit)।
- (2) आप में से प्रत्येक कम से कम एक और व्यक्ति को संस्कृत में शिक्षित करेगा Each one, teach one. आपके विद्यार्थियों में बालक और किशोर तो हों ही, प्रौढ़ भी हो सकते हैं। संस्कृत के प्रचार–प्रसार में प्रौढ़ शिक्षा (Adult Education) का कार्यक्रम भी सम्मिलित कीजिए।
- (3) संस्कृत प्रमोशन फाउण्डेशन संस्कृत के उन्नयन प्रचार–प्रसार हेतु समर्पित संस्था है। शोध–अन्वेषण–नवप्रयोग कर रही है। उसकी गतिविधियों से जुड़ें, उसे सहयोग दें।
- (4) इस वर्ष हम महात्मा गांधी की जयन्ती का 150 वां वर्ष भी मना रहे हैं। हमारे युवा स्वस्थ सांस्कृतिक संकल्प तो ले ही रहे हैं वे स्वयं को इन सात दोषों से मुक्त रखेंगे यह गांधी जी का निर्देश है। ये सात दोष जिन्हें गांधी जी Seven ‘social sins’ कहते हैं— वे हैं—

1. सिद्धान्त विहीन राजनीति (Politics without Principles)
2. श्रम रहित अर्थोपार्जन (Wealth without Work)
3. सद्विवेक विहीन विषय–सुख (Pleasure without Conscience)
4. चरित्र विहीन ज्ञान (Knowledge without Character)
5. पुण्य विहीन व्यापार (Commerce without Morality)
6. हृदयहीन विज्ञान (Science without Humanity)
7. त्याग विहीन पूजन–अर्चन (Worship without Sacrifice)

आदरणीय डॉ. पोखरियाल ‘निशंक’, आदरणीय श्री धोत्रे जी, प्रणम्य कुलपति श्री परमेश्वर शास्त्री जी, आपके माता–पिता एवं सभी गुरुजन तथा मेरी भी शुभकामनायें और मंगलाशीष आपके साथ हैं।

जयतु संस्कृतम्, जयतु भारतम्

////////////////////////////////////